॥ अर्हम् ॥

सन्मार्ग प्रचार समिति, केकड़ी के प्रकाशन :

नं.	ग्रन्थ का नाम	पृष्ठ	मूल्य	प्रकाशन काल
१.	पदमावती पूजा मिथ्यात्व है	३०	१)	१९७२
२.	शासनदेव पूजा रहस्य (विद्वद् परिषद् द्वारा १००१) रु. से पुरस्कृत)	५०	२)	१९७५
३.	जैनधर्म में रात्रि पूजा का निषेध	२४	१)	१९७६
४.	सम्यक् पूजा विधि	२०	१)	१९८०
५.	स्त्री प्रक्षाल निषेध	६०	२)	१९८४
६.	केशर पुष्प विधान	३२	१)	जन. १९८७
७.	अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य	४०	१)५०	फर. १९८७

*

निम्नांकित प्रकाशन भी उपलब्ध हैं :

नं.	ग्रन्थ का नाम	पृष्ठ	मूल्य	प्रकाशन काल
१.	जैन निबंध रत्नावली (सजिल्द)	५००	३)	१९६६
२.	सामायिक पाठादि संग्रह	१२५	१)५०	१९५४
३.	चूनड़ी (ज्ञान कुंजी)	४०	१)	१९६०

**

प्राप्तिस्थान :

मिलापचन्द्र रतनलाल कटारिया
केकड़ी (अजमेर-राज०)–३०५४०४
KEKRI (Ajmer)

श्री मिलापचंद्र कटारिया जैन ग्रंथमाला
पुष्प नं० ७

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य

(सम्यक् पूजा विधि)

*

लेखक :
रतनलाल कटारिया, केकड़ी (अजमेर)

प्रकाशक :
श्री. चन्दनमल पदमकुमार गदिया
डिग्गी मोहल्ला, ब्यावर (राजस्थान)
(सन्मार्ग प्रचार समिति, केकड़ी के सौजन्य से)

***

द्वितीय संस्करण
मार्च–१९८७

मूल्य २)००

❋ पुस्तक : अष्टद्रव्य पूजा रहस्य

❋ लेखक : रतनलाल कटारिया, केकड़ी–३०५४०४

❋ प्रकाशन समय : मार्च १९८७

❋ संस्करण : द्वितीय, १००० प्रति

❋ मूल्य : रुपये २)००

❋ द्रव्य प्रदाता : दत्तक सुपुत्र श्री पदमकुमारजी गदिया, ब्यावर (स्वर्गीय (सन् १९८४) पूज्य पिताजी चन्दनमलजी गदिया तथा स्वर्गीय (सन् १९८६) पूज्य मातु श्री सुगन देवी की पुण्य स्मृति में)

❋ मुद्रक : गर्ग प्रिन्टर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर–३०५००१

❋ सौजन्य : सन्मार्ग प्रचार समिति, केकड़ी

❋ ग्रन्थमाला : श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रन्थमाला

❋ पुष्प : नम्बर ७

❋ मन्त्री : पदमकुमार कटारिया, केकड़ी

□

॥ श्रीः ॥

सन्मार्ग प्रचार समिति

❋

—उद्देश्य—

१. अविवेक पूर्ण थोथे क्रियाकांडों, सम्यक्त्व को मलिन करने वाले मिथ्यात्व के परिपोषक विधि विधानों, अपार महंगाई के युग में धर्म के नाम पर किये जाने वाले अपव्ययों का प्रतिरोध।

२. साधुवेषियों और उनके समर्थक स्वार्थी पण्डितों द्वारा की जाने वाली—सिद्धान्त-विरूद्ध प्ररूपणा, वीतराग धर्म-विमुख पद्धति, समाज को विशृंखल करने वाली कलह विसंवाद जनक प्रवृत्ति, मिथ्या विचार और शिथिलाचार का विरोध।

३. गुरूडमवाद से मुक्ति दिलाकर जागृति पैदा करने वाले, जिनशासन की प्रभावना करने वाले, वीतराग मार्ग के परिपोषक, समीचीन-धर्म के उद्-बोधक, अहिंसा के प्ररूपक क्रिया कलापों का सम्यक् प्रचार।

—नियम—

१. वितंडावाद कषाय-भावना व्यक्तिगत आक्षेपादि से दूर, शांत शालीन पद्धति में विश्वास रखनेवाला, सद्धर्म-प्रचार की भावना रखने वाला, अहिंसा और वीतराग मार्ग की रक्षा के लिये सदैव सन्नद्ध, निर्भीक और स्वस्थ विचारक कोई भी सज्जन इस समिति का सदस्य बन सकता है।

२. सदस्यता फीस ३१) रुपये हैं।

— कार्य —

फिलहाल समिति ने सन्मार्ग प्रचारार्थ एक ग्रंथमाला प्रारम्भ की है जिसका नाम "श्री मिलापचंद्र कटारिया जैन ग्रंथमाला" रखा गया है।

५ मई ७१ को दिवंगत स्व० पण्डित-प्रवर मिलापचंद्रजी सा० कटारिया, केकड़ी की अनवरत श्रुत-सेवाओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उनकी पुनीत स्मृति में यह ग्रंथमाला स्थापित की गई है।

समिति के सदस्यों को इस ग्रंथमाला के सभी प्रकाशन बिना मूल्य दिये जाने का प्रावधान है।

कोई भी सज्जन समिति के उद्देश्यों के अन्तर्गत किसी भी विषय का कोई ट्रेक्ट छपवाना चाहें तो समिति छपवा देगी। अर्थ-व्यय उन्हें वहन करना होगा।

किसी भी त्यागी और पण्डित द्वारा वीतराग मार्ग पर की जाने वाली कैसी भी आपत्ति-शंका-उत्सूत्र प्ररूपणा आदि के निरसन के लिये कभी भी किसी संस्था समाज और व्यक्ति विशेष को आवश्यकता हो तो समिति से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं समिति हर सम्भव सहयोग के लिये सदैव तैयार रहेगी।

मन्त्री—पदमकुमार कटारिया, केकड़ी

मिथ्या तमः पटलभेदन कारणाय।
स्वर्गा पवर्ग पुरमार्ग निबोधनाय॥
तत्तत्व भावन मना प्रणमामि नित्यं।
त्रैलोक्य मंगल कराय जिनागमाय॥

***

॥ श्रीः ॥

आमुख

*

सन् १९८० में २० पृष्ठीय 'सम्यक् पूजा विधि' की पांच सौ प्रतियां छपी थी जो तत्काल विक्रय हो गई। इस पुस्तक को उपयोगी और महत्त्वपूर्ण समझ अध्यात्मयोगी पूज्य मुनिप्रवर विजयसागरजी महाराज सा. ने अपनी सर्वप्रिय महान् पुस्तक "आगमदीपिका" (दो हजार प्रति) में भी इसे ग्रथित किया था वह भी बहुत जल्दी समाप्त हो गई तब से पुस्तक की बराबर मांग चल रही थी। अतः हमने इसे पल्लवित कर प्रारंभ में दो नये निबंध इसमें और संकलित कर दिये हैं तदनुसार नाम भी "अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य" नया रख दिया है। अन्त में "अष्टद्रव्य पूजा रहस्य, पर आपत्तियों का निरसन" यह एक और नया लेख संगृहीत कर दिया है। आशा है विज्ञ पाठक इन सबसे समुचित लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

श्री दि. जैन समाज में आजकल दो प्रकार की पूजाविधि प्रचलित है। एक तेरापंथ आम्नाय की और दूसरी बीस पंथ आम्नाय की। तेरापंथ की पूजाविधि प्राशुक, अहिंसक, वीतराग, अपरिग्रहमय और सुसंगत है जबकि बीस पंथ की में एतद् विषयक बहुत सी खामियां है।

७८ वर्ष पहिले पं. उदयलालजी काशलीवाल ने (जिन्होंने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह किया था) बीस पंथ आम्नाय की पोषक असद्युक्तिपूर्ण "संशयतिमिर प्रदीप" पुस्तक लिखी थी उसी के आधार से अब तक बीस पंथी विद्वान् और मुनि यदाकदा पुस्तकें प्रकाशित कराते रहे हैं काशलीवालजी की उक्त पुस्तक का गुजराती अनुवाद भी निकला है और अभी यही आगम-दर्पण नाम से भी प्रकाशित हुई है।

हमने इन्हीं पुस्तकों के १ शासनदेव पूजा २ रात्रि पूजा ३ सचित्त द्रव्य पूजा ४ स्त्री प्रक्षाल के विरोध में क्रमशः निम्नांकित ५ पुष्प प्रकाशित कराये

हैं, १ पद्मावती पूजा मिथ्यात्व है २ शासन देव पूजा रहस्य, ३ रात्रि पूजा निषेध ४ सम्यक पूजा विधि ५ स्त्री प्रक्षाल निषेध। छटा पुष्प— "केशरपुष्प विधान" है जो शाह पं. जौहरीलालजी कृत है यह अभी जनवरी ८७ में ही प्रकाशित हुआ है। इसमें केशर (चंदन) पुष्प (रगे चांवल) इन दो द्रव्यों का निषेध नहीं किया है किन्तु इनके विषय में यह बताया है कि- इन्हें प्रतिमा से स्पृष्ट न कर प्रतिमा के आगे चढाना ही सही विधान है। यही बात पं. टोडरमलजी सा. ने मोक्ष मार्ग प्रकाशक के आदि में लिखी है कि—

"विधिपूर्वक जितने कृत्रिम जिन बिम्ब राजे हैं उन्हें हमारा नमस्कार होऊ"।

अगर लेप और शृंगार सहित ये होते तो "विधिपूर्वक" ऐसा नहीं कहते इससे जिन बिम्ब निर्लेप निःशृंगार ही पूज्य हैं। लेप और शृंगार सहित को पूज्य मान लेंगे तो फिर श्वे. मूर्ति और श्वे. पूजाविधि भी हमें पूज्य-मान्य करनी होगी जो कभी संभव, योग्य नहीं।

दि. जैन पूजाविधि और संसार की अन्य सब पूजा विधियों में यही तो खास अंतर और विशेषता है कि-दि. विधि तो वीतरागता और प्राशुकता को लिए है और सब सराग तथा सावद्य हैं। नहीं तो पूजा के द्रव्य तो प्राय: सब में समान हैं।

कवि वृन्दावनदासजी कृत-संभव नाथ पूजा में भी प्राशुक फल ही बताये हैं : "ले फल प्राशुक पूजूं तुम पद, देहूं अरवयपद नाथ हमें ॥८॥

जिससे हमें रोज वास्ता पड़ता है उस पूजा विधि का सम्यक्ज्ञान हमारे लिये सर्वप्रथम आवश्यक है अन्य शास्त्र-ज्ञान बाद में है। इसी को लक्ष्य में रखकर इस "अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य" सप्तम पुष्प का प्रणयन किया गया है। इसमें अष्टद्रव्यों की पूजा विधि ही नहीं बताई है किन्तु इसका सुसंगत प्रयोजन भी स्पष्ट किया है जो अबतक तिरोहित था उस रहस्य का उद्घाटन किया है।

जनधर्म में जब विकार प्रविष्ट हो श्वे. पंथ प्रस्फुटित हुआ तो उसके विपक्ष में दि. पंथ उद्भूत हुआ। दि. धर्म कोई नया नहीं है जैनधर्म का ही वास्तविक रूप है। उसी तरह जब दि. धर्म में विकृतियां आकर बीस पंथ (विषम पंथ) पैदा हुआ तो उसके प्रतीकार में तेरा पंथ (सुगम पंथ) आविर्भूत हुआ। तेरा पंथ कोई नया नहीं है वह जैन दि. धर्म का ही असली रूप है। "दिगम्बर" और "तेरा" परिस्थिति वश समय समय पर नाम बदले हैं वस्तुत: हैं दोनों ही जैन धर्म के स्वरूप ही। आजकल राजस्थान में सराग पंथ का बहुत प्रचार हो रहा है इसका कारण धर्म-मर्म और वीतरागता से अनभिज्ञ त्यागीव्रती और आडंबर प्रिय श्रावक वर्ग है। अगर इनका संघ (आ. धर्म सागरजी संघ) इनका पत्र (जैनगजट) इनकी सभा (महासभा) यह उद्घोषणा कर दे—आदेश निकाल दे कि—

"समस्त दि. साधु संघ और उनका अनुयायी वर्ग दि. तेरा पंथ आम्नाय को सम्यक् (समीचीन) मानता है। जहां भी धर्मायतनादि में इस आम्नाय का प्रचलन है चतुर्विध संघ (मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका) उसको सदा सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न करेगा। कहीं भी इसमें कोई हस्तक्षेप परिवर्तन विसंवाद कदापि नहीं करेगा।"

तभी सामाजिक एकता संगठन और धर्म की सच्ची प्रभावना संभव है। अगर फिलहाल इतना भी नियम हो जाये कि-केशर पुष्प लगाने बाद तत्काल पूजक स्वयं उन्हें हटादे तो समस्या कुछ नियन्त्रित हो सकती है।

भगवान् पांचों कल्याणकों में नग्न होते हैं १ गर्भ में नग्न २ जन्मते नग्न ३ दीक्षा में नग्न ४ केवल ज्ञान में नग्न ५ मोक्ष में नग्न ॥ इसी से पांचों कल्याणकों का और नग्न दिगम्बरता का बहुत महत्व है। सारे संसार पर इसी का राज है सारा जगत (पशु पक्षी कीट पतंग त्रस स्थावर तिर्यंच मनुष्यादि) सारी प्रकृति इसी की मुद्रा (नग्नता) से अंकित है—

सर्वं पश्यत बादिनो जगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितम् ॥

इसी से जिन-मूर्ति को नग्न दिगम्बर और "चर्चा सागर" में पंचकल्याण-मयी माना है। अष्ट द्रव्य भी पंचकल्याण के ही प्रतीक हैं इनके माध्यम से नित्य पूजा में तीर्थंकर-चरित्र का गुम्फन किया गया है। यही सब "अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य" में स्पष्ट किया है। 'लाटी संहिता' अ० ५ श्लोक १७४ में भी पंचोपचारी पूजा को पंचकल्याणमयी ही बताया है। डॉ. नेमीचन्द्रजी शास्त्री ने (सन् ६८) "भंवरीलालजी बाकलीवाल स्मृति ग्रंथ" (पृष्ठ २४९) में पंचोपचारी पूजा को पंचकल्याणक की स्मृति स्वरूप बताया है।

रत्नकरण्ड श्रा., पद्मपुराण सर्ग ११ श्लो. ४० में पूजा को वैयावृत्य (अतिथि संविभाग) शिक्षाव्रत में बताया है। यशस्तिलक चंपू मूलाचार गा. २३ की बसुनंदि टीका, संस्कृत भावसंग्रह में सामायिक (देव वदना) शिक्षाव्रत में बताया है। भावसंग्रह गाथा ६३६ और ५५२ में पदस्थ एवं भद्र ध्यान में बताया है। इस प्रकार गृहस्थ के लिए पूजा आवश्यक और पंचकल्याण की शिक्षिका है।

यथाखर श्चंदन भारवाही।
भारस्य वेत्ता न तु चंदनस्य ॥
तथा हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य।
सारं न जानन् खरबद् वहेत्सः ॥

केवलं शास्त्र माश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णय;।
युक्तिहीन विचारे तु, धर्महानि प्रसज्यते ॥

देवधर्म गुरू शास्त्र ये बड़े रतन संसार।
इनको परखि प्रमाणिये, यह नरभव फलसार ॥४७॥
जे इनकी जाने परख, ते जग लोचनवान्।
जिनको यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ॥४८॥
लोचन हीने पुरुष को, अंध न कहिये भूल।
उर लोचन जिनके मुंदे, ते अंधे निरमूल ॥४९॥
—पार्श्वपुराण (कवि भूधरदासजी)

जिनके हिरदे पक्ष है, तांहि नही निरधार।
फिर फिर पन छूटे नहीं, धूल छान सौ बार ॥

इस पुस्तक को प्रायः प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत किया है। यह शैली अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि श्री जिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि और गणधरों की वाणी भी प्रश्न के उत्तर रूप में ही प्रकट हुई है। अतः हमने इस शैली को आदर्श माना है। अगर विज्ञपाठकों ने इससे—समुचित लाभ उठाया तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

प्रश्नोत्तर ये सार रतन हिरदय धरें।
करके चिन्तन मनन, ज्ञानवरधन करें ॥

दिनांकः
२६-१-८७ ई.

विदुषामनुचरः
रतनलाल कटारिया, केकड़ी

॥ श्री ॥

अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य

*

भगवान् जिनेन्द्र की पूजा अष्ट द्रव्य से की जाती है ऐसा प्राचीन तिलोय पण्णत्ती आदि ग्रन्थों में लिखा हुआ है । इन आठ द्रव्यों का क्रम इस प्रकार है:—

१ जल, २ चन्दन, ३ अक्षत, ४ पुष्प, ५ नैवेद्य, ६ दीप, ७ धूप, ८ फल । भारतीय धर्मों में अपने आराध्य की पूजा प्रायः इन्हीं द्रव्यों से की जाती है। लोक में भी अपने प्रियजनों का, आरतिया के वक्त क्रमशः इन्हीं द्रव्यों से सत्कार किया जाता है। ये सब द्रव्य भोगोपभोग रूप हैं। इन द्रव्यों का अन्य धर्मों के देवों के साथ सरागी होने से सामंजस्य बैठ जाता है किन्तु श्री जिनदेव पूर्ण वीतरागी होने से उनके साथ इन द्रव्यों की संगति नहीं बैठती क्योंकि वे कुछ खाते पीते उपभोग करते नहीं तब हम उनके साथ यह निष्प्रयोजन असंगत क्रिया क्यों करते हैं ? क्यों भगवान् को ये अष्टद्रव्य चढ़ाते हैं ? नीचे इसी रहस्य का उदघाटन किया जाता है:—

आठ द्रव्यों के चढ़ाने के पहिले १ आह्वानन, २ स्थापन, ३ सन्निधिकरण भी किया जाता है। ये सब नीचे अनुसार पंचकल्याणक के प्रतीक रूप हैं। पंच कल्याणक में तीर्थंकर भगवान् का सारा जीवन-चरित्र आ जाता है। उस जीवन-चरित्र को प्रतिदिन हृदयंगम कराने के लिये आचार्यों ने नित्य पूजन में अष्टद्रव्यों का नियोजन किया है। इस प्रक्रिया से निरक्षर भी सहज तीर्थंकर-लीला का पारायण कर सकता है। देखिये :—

पंचकल्याणक	तीन उपचार और अष्ट द्रव्य
1. गर्भ कल्याण :	अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं (स्वर्ग से उतरकर भगवान् का मर्त्य लोक में आगमन) अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम् (तीर्थंकर का गर्भ-स्थापन)

2. जन्म कल्याण : अत्र मम सन्नि हितो भवभव वषट् इति सन्नि-धिकरणम् (इन्द्र का नवजात शिशु भगवान् को गोदी में लेना)
१ जल (अभिषेक), चंदन (अंगराग), ३ अक्षत (पुंजधरना), ४ पुष्प (फूलमाला),

3. तपकल्याण : ५ नैवेद्य (आहार दान);

4. ज्ञान कल्याण : ६ दीप (केवल ज्ञान ज्योति),

5. मोक्ष कल्याण : ७ धूप (अष्ट कर्म नाश), ८ फल (मोक्ष प्राप्ति);

इसीलिये पूजन में सर्वप्रथम पंचकल्याण का अर्घ चढ़ाया जाता है। अभिषेक के बाद सहस्त्राक्ष=इन्द्र के द्वारा जिनदर्शन रूप में सहस्र नाम का अर्घ चढ़ाया जाता है। २४ तीर्थंकर पूजा में पंचकल्याणक तिथियों के नामोल्लेख पूर्वक अलग-अलग अर्घ चढ़ाये जाते हैं। इससे भी द्योतित होता है कि नित्य पूजा पंचकल्याणक ही का प्रतीक है। लाटी संहिता सर्ग ६ श्लोक १७४-१७५ में पूजा के 5 प्रकार आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजन, विसर्जन बताये हैं और इन्हें पंचकल्याणकों को देने वाला बताया है। अर्थात् ये पंचकल्याणक के प्रतीक हैं।

प्रश्न :—यहाँ जलद्रव्य को अभिषेक रूप में कैसे लिया ? जबकि अभि-षेक, जलादि अष्ट द्रव्यों से पूर्व में अलग ही किया जाता है।

समाधान :—तिलोय पण्णत्ती, जंबू दीव पण्णत्ती, वरांग चरित, पदम-पुराण, हरिवंश पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में अभिषेक अलग नहीं बताया है बल्कि अष्टद्रव्यों में से ही प्रथम जल द्रव्य को अभिषेक रूप में प्ररूपित किया है। इसके सिवा ३ उपचार (आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण) जो गर्भ कल्याणक के प्रतीक हैं वे भी इन ग्रन्थों में नहीं दिये है। इसीसे इन ग्रन्थों में तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियों में गर्भकल्याणक की तिथियाँ और उनके नक्षत्र भी नहीं दिये हैं। गर्भकल्याणक को जन्मकल्याणक में ही गर्भित कर लिया है इसी से ३ उपचार नहीं माने हैं। जलादि ८ द्रव्यों

द्वारा जन्मकल्याणक से प्रारम्भ कर मोक्षकल्याणक तक प्रमुख चार कल्याण ही लिये हैं।

जैन धर्म की यह विशेषता रही है कि—यहाँ हर चीज संस्कारित होकर प्रांजल रूप में प्रस्तुत हुई है, देखिये :—

१. रामायणादि के कथानक, शलाका पुरुषों के जीवन चरित अन्य धर्मों की अपेक्षा यहाँ सुसंगत, सुव्यवस्थित और सार्थक रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

२. आशाधरादि कृत जिन सहस्र नाम में अमर कोषानुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि के सब पर्यायवाची नाम दिये गये हैं किन्तु अर्थ सब जैन संस्कृति के अनुसार ही व्यक्त किया गया है। जिनसेनाचार्य ने कालिदास के "मेघदूत" का अपने पार्श्वाभ्युदय में जैनीकरण कर दिया है।

3. "अजैर्यष्टव्यं" इस श्रुति में हिंसानंदी अज का अर्थ बकरा करते हैं और अहिंसावादी तीन वर्ष पुराना धान्य करते हैं जैसा कि महाभारत में लिखा है। पदमपुराण व उत्तरपुराणादि जैन ग्रंथों में भी वसु पर्वत नारद के कथानक में इसे दिया है। अज से यज्ञ (पूजा) करना चाहिये इस श्रुति वाक्य से जैनाचार्यों ने अज (जो न उगे) का तात्पर्य चांवल लिया है क्योंकि तुष हटाने के बाद यह प्रासुक (न उगने योग्य) हो जाता है इसीलिये जिन-पूजा में इसे ग्रहण किया है। अन्य सब धान्य सचित्त होने से जिन पूजा के योग्य नहीं है। ३ वर्ष पुराना धान्य स्वतः अचित्त हो जाने पर भी उसमें अनेक सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति हो जाने से अग्राह्य-अभक्ष्य हो जाता है जबकि निस्तुष चांवल ताजा होने पर भी (३ वर्ष की जरूरत नहीं) प्रासुक होता है और माली के भी काम आ जाता है।

जैन धर्म अहिंसा प्रधान निरारंभ निष्परिग्रहादि रूप है। अतः सब धार्मिक क्रियाओं में यथाशक्य इस ओर पूरा ध्यान रखना चाहिये। इसीलिये पूजा भक्ति लीला आदि में स्थापना निक्षेप मान्य किया है। असल यहाँ अनुचित माना है और नकल समुचित। असल में हिंसा आरंभ परिग्रह

विशेष है और नकल में कम। असल में जटिलता दुर्लभता है और नकल में सरलता सुलभता है।

इसीसे असली भगवान्, असली इन्द्र, असली सिंहासन, असली चमर, क्षीरसागर का जल, रत्नों के दीप, मोतियों के अक्षत कहाँ है? चाहे बोलते मानते हम यहीं हैं।

जब इतना काम हम नकली करते हैं—स्थापना निक्षेप से काम लेते हैं तब फिर किन्हीं व्यक्तियों का—"घेवर गिंदोड़ा बरफी जु पेड़ा" की जगह चिटक, दीप की जगह रंगी हुई गिरि, पुष्प की जगह रंगे हुए अक्षत, फल की जगह सूखे प्रासुक बिदाम कमल गट्टा चढ़ाने पर आपत्ति करना वृथा-बेजा है। न यह कपट है, न असत्य, न अशोभन, न हानिप्रद, किन्तु पूर्णतया यह "सत्यं शिवं सुदरं" है।

इससे भी कोई कलापूर्ण समीचीन विधि हो तो वह मान्य की जा सकती है। अक्षतों को रंगकर पुष्प बनाने की बात आशाधरादि सभी ने मान्य की हैं। असल की जगह नकल रूप स्थापना सत्य की महत्ता को समझने के लिये नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. देश-विदेश के नक्शे में असली ग्राम नगर समुद्र नदी पर्वत रेल पथादि नहीं बताये जाते, बताना आपत्तिमय और मूर्खतापूर्ण है। सांकेतिक रेखाओं से ही ज्ञान करते हैं काम चलाते हैं।

२. काकड़ी का 'क' में काकड़ी असली नहीं होती केवल उच्चारण मात्र किया जाता है क्योंकि वह तो केवल 'क' की पहिचान के लिये है। इसकी जगह चाहे कमल, कमरख बोलें सब एक हैं।

३. 'द्रौपदी का चीर बढ़ाया सीता प्रति कमल रचाया' जैसे ईश्वर कर्त्तृत्व के शब्द बोलते हैं किन्तु हम जिनेन्द्र को कभी ऐसा नहीं मानते, बोलना कुछ मानना कुछ भक्ति की भाषा कुछ ऐसी ही भिन्न और विचित्र होती है। इसी तरह बोलना कुछ और चढ़ाना कुछ यह भी भक्ति की पद्धति है। क्योंकि हमारा लक्ष्य तो अष्ट द्रव्यों के असली नामों के जरिये पंच-

कल्याणक (तीर्थंकर लीला) को हृदयंगम करना है। अतः प्रचलित पूजा पाठों में कुछ भी परिवर्तन करने की कोई जरूरत नहीं है।

४. जो काम नकल से ही हो जाता है उसके लिये असल की आफत मोल लेना अनुचित है। जो काम रस से होता हो उसके लिये विष-प्रयोग बेवकूफी है। कागज के नोट, ड्राफ्ट, चैक, हुंडी से काम कितना सरल और निरापद होता है यह तो सबके अनुभूत है, इसी तरह सर्वत्र बुद्धिमानी से काम लेना चाहिये।

५. रामलीला में जो रावणवध, राक्षसवध, लंकादहन बताया जाता है वह कभी भी असली नहीं होता, असली प्राणघातक आपत्तिपूर्ण है। राक्षसों का मांस भक्षण मद्यपान भी नकली ही बताया जाता है। नकली सही होता है और असली गलत।

६. सभी संस्कृत प्राकृत के अभिषेक पाठों में अभिषेक को जन्मकल्याणक का प्रतीक माना है फिर भी हम जन्मकल्याणक के वस्त्राभूषणादि का प्रयोग नहीं करते क्योंकि वीतराग मूर्ति के साथ ये असंगत ठहरते हैं। अतः 'जल, चंदन, अक्षत्, पुष्प' के सम्यक् प्रयोग से ही जन्म से लेकर राज्यावस्था तक की सब पिंडस्थ भावनाओं को संगृहीत कर लेते हैं, यही प्रांजल शालीन पद्धति है। जैसे कथा में थप्पड़ लगाने वस्त्र फाड़ने आदि बातों को साक्षात् श्रोता के साथ करके नहीं बताई जाती। 'नैवेद्य' से पदस्थ भावना (तपकल्याणक) 'दीप' से रूपस्थ भावना (ज्ञानकल्याणक) 'धूप, फल' से रूपातीत भावना (मोक्षकल्याणक) को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार ये अष्ट द्रव्य चार कल्याणक और चार भावनाओं के प्रतीक है।

७. वरं बुद्धि र्न सा विद्या, विद्याया बुद्धिरुत्तमा। बुद्धिहीना विनश्यंति, यथाते सिंह कारकाः (शब्द ज्ञान की अपेक्षा विवेक उत्तम होता है, विवेक—हीन मनुष्य सजीव (असली) सिंह बनाने वाले विद्यावन्तों की तरह विनाश को प्राप्त होते हैं।)

अतः अष्ट द्रव्य पूजा में असली का आग्रह रखना, शब्दों पर जोर देना नितांत अनुचित, अपुण्यमय और अज्ञानपूर्ण है। इस तत्त्व को न समझने

से आज अनेक विसंवाद प्रचलित हैं। जितना शीघ्र विशाल रूप में इस तत्त्व का प्रचार हो उतना ही श्रेयस्कर है। खासतौर से साधु-त्यागी वर्ग में, क्योंकि वे ही असमीचीन के पृष्ठ पोषक हैं। जिन-पूजा में इस बात का ख्याल रखना जरूरी है कि चंदन पुष्पादि को वीतराग प्रतिमा से स्पृष्ट नहीं किया जाय क्योंकि सिवा रूढ़ि और अज्ञान के इससे कोई प्रयोजन, लाभ भी सिद्ध नहीं होता उल्टा, वीतराग प्रतिमा का अवर्णवाद होता है ऐसी प्रतिमाओं को वंदन करना गलत अक्रियाओं का समर्थन करना है इस तरह से तो फिर तो श्वे. प्रतिमायें भी पूज्य हो जायेगी। अकलंक स्वामी की कथा में तो वीतराग मूर्ति पर एक सूत का धागा मात्र डालने से ही उसे अपूज्य होना बताया है जबकि चदन पुष्प तो स्पष्ट सरागता (संसारता) के द्योतक हैं। अत: इस ओर पूर्ण सावधानी रखना ही दिगम्बरत्व है—सम्यक्त है, यही विवेक है, यही सम्यक् पूजा विधि है। 'मोक्ष मार्ग प्रकाशक' पृ. १६४ (अधिकार ५) में भी पूजा द्रव्यों का उत्तम (प्रासुक) होना और उन्हें प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना लिखा है। उपरोक्त रीति से जिन पूजा में अष्ट द्रव्य चढ़ाते वक्त हमें उन्हें पंचकल्याणक भावना (तीर्थंकर जीवन चरित्र) रूप में ही हृदयंगम (स्मरण) करना चाहिये। यही 'अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य' है।

अभिषेक रहस्य

१. प्रश्न—क्षीर समुद्र के जल से ही देवों ने जन्माभिषेक क्यों किया?

उत्तर—अन्य कूप तड़ाग सरिता सागर आदि के जलों में त्रसजीव होने से उसे अभिषेक के योग्य नहीं समझा गया। क्षीर समुद्र के जल में जलचर जीवों का अभाव होने से (देखो–नेमिचन्द्राचार्यकृत "तिलोयसार" गाथा ३२०) उसे बिना छाने अभिषेक योग्य समझा गया न कि वह जल क्षीरमयी होने से। वह जल न तो क्षीर वर्ण का था और न क्षीर ही था अगर क्षीर (दुग्ध) ही होता तो उसे जल शब्द से नहीं लिखते उसका स्वाद सिर्फ क्षीर जैसा होने से उसकी संज्ञा क्षीर कहलाती थी (वैसे कोषों में क्षीर का अर्थ जल भी है देखो अमरकोष–"नीर क्षीराम्बुशंबरम्।")

त्रसजीवों का अभाव तो मनुष्य क्षेत्र से बाहर के दूसरे निकटवर्ती तीसरे चौथे समुद्रों के जल में भी है, उन्हीं का जल अभिषेक के अर्थ क्यों नहीं लाये? दूरवर्ती पंचम क्षीरसमुद्र का क्यों लाये? इसका उत्तर यह है कि—देवों की संख्या इतनी अधिक थी कि—उनकी पंक्ति क्षीर समुद्र तक ही समा सकती थी कम क्षेत्र में नहीं। इसलिये जल लाने का विस्तार क्षीर समुद्र तक करना योग्य समझा गया।

यदि कहो कि—देवगण विक्रिया से समा सकने योग्य अपना अपना छोटा शरीर कर सकते थे किन्तु वैसा करने से शोभाहीनता आती थी। शरीर छोटा और कलश बड़े ऐसा दृश्य भद्दा मालूम देता। इस पर भी यह कहें कि—कलशों को भी छोटे कर लेते तो ऐसा करने पर पर्याप्त काल तक पर्याप्त अभिषेक नहीं होता।

अ. प्रश्न—पर्वत पर विराजमान कर ही क्यों अभिषेक किया? अन्यत्र क्यों नहीं किया?

उत्तर—एक तो उससे सर्वोच्चासन अपने आप बन गया। दूसरा, वहीं करने से न अभिषेक-जल इकट्ठा हुआ और न कीचड़ हुआ। भगवान् के बहाने से गिरिराज सुमेरु का भी स्नान हो गया वस्तुत: शिशु भगवान् को तो एक कलश ही पर्याप्त था, जैसे एक अतिथि के आने से उसके बहाने सारे परिवार को खाने के लिए माल मिल जाता है।

ब. प्रश्न—देवता असंख्यात थे तब कलश एक हजार आठ ही कैसे?

उत्तर—कलशों की संख्या तो इतनी ही थी देवता इसलिए असंख्यात थे कि उनकी पंक्ति क्षीर समुद्र से लेकर सुमेरु तक बराबर लग गई बार बार न किसी को चलना चढ़ना पड़ा किन्तु एक से दूसरे के द्वारा क्रमश: प्रत्येक के हाथ में होते हुए पूरे १००८ कलश पहुँच गए और अभिषेक के बीच कोई व्यवधान भी नहीं पड़ा लगातार अभिषेक हो गया।

स. प्रश्न—देवताओं ने दशवें रोज न्हावण के दिन ही जिनाभिषेक क्यों न कर लिया?

उत्तर—दशवें रोज तो मुख्य रूप से प्रसूता का ही न्हावण (स्नान) होता है क्योंकि उसका प्रथम रोज नहीं होता बालक का तो सर्वांग रूप से तत्काल ही स्नान जन्माभिषेक) आवश्यक होता है।

द प्रश्न—जन्मते अशुद्ध भगवान् को हाथी पर इन्द्र कैसे ले गया ? अगर शुद्ध थे तो फिर अभिषेक की क्या जरूरत हुई ?

उत्तर—धर्मशर्माभ्युदय ६-९ में बताया है कि—"गर्भेवसन्नपि मलै रकलंकितांगो" (गर्भ में रहते भी भगवान् मल से दूषित नहीं थे) फिर भी जेर (नाल) आदि से शुद्ध कर भगवान् को माता के पास सुला दिया था वहां से इन्द्राणी ने लाकर उन्हें इन्द्र को सौंपा था अत: भगवान् शुद्ध थे फिर उनका जो इन्द्र ने अभिषेक किया वह शुद्धि के लिए नहीं किन्तु अपनी दासता सेवकता भक्ति और भगवान् की जगत्पूज्यता बताने को किया था जैसे राज्याभिषेक के वक्त नागरिकादि सब राजा का अभिषेक करते हैं वह शुद्धाशुद्धि की दृष्टि से नहीं किन्तु अपनी सेवकता हीनता और राजा की स्वामिता उच्चता बताने को करते हैं।

इससे जो भाई जिनाभिषेक का निषेध करते हैं या उसे शुद्धि ही के लिए मानते हैं उन्हें इससे अपना समाधान करना चाहिए। गौतम गणधर कृत प्राचीन चैत्यभक्ति के अंचलिका पाठ में भी "दिव्वेण न्हाणेण से अभिषेक का विधान किया है। बिना इसके जन्म कल्याणक की भावना ही प्रस्फुटित, नहीं होती जैसा कि पूर्व में (अष्ट द्रव्य पूजा रहस्य में) पंचकल्याणक भावना के अन्तर्गत जल को अभिषेक जन्म कल्याणक का प्रतीक द्योतित किया है।

भगवान् के जन्म से निर्वाण पर्यन्त—ऐरावत हाथी पर आरूढ़ करना, छत्रत्रय लगाना, चमर ढोरना, सुमेरु पर अभिषेक करना, आहार वस्त्रालंकारादि का प्रबंध करना, पालकी उठाना, सिंहासन लगाना, पुष्प वृष्टि करना, दुंदुभि बजाना (अष्ट प्रातिहार्य) आदि कार्य—नियोग जो देवगण करते हैं वह सब भी भगवान् की सेवा चाकरी का ही द्योतक है। देखो आदि पुराण पर्व २३ श्लोक १४०-१४१, पर्व १३ श्लोक ६१-६२। आशाधर प्रतिष्ठा पाठ अ. ४ श्लोक ४१। भूपाल चतुर्विंशति का श्लोक २२।

६. प्रश्न—पंचामृताभिषेक क्यों नहीं ? जलाभिषेक ही क्यों ?

उत्तर—अभिषेक (स्नान) जल से ही होता है। दुग्ध दधि घृत शर्करा से कभी किसी का नहीं होता। शास्त्रों में जहाँ भी देवों द्वारा प्रतिमाभिषेक का वर्णन आया है सर्वत्र जल से ही अभिषेक बताया है। देखो तिलोय पण्णत्ती आदि सभी ग्रंथ। कहीं भी देवों द्वारा पंचामृत से अभिषेक नहीं बताया है।

कुछ ग्रंथों में मनुष्य कृत जिन-पूजा में पंचामृताभिषेक का वर्णन आया है वह मूर्ति-प्रतिष्ठा को लेकर है। प्रतिष्ठा में धूलिकलशाभिषेक अनेक क्षाराम्ल रसों के अभिषेक भी बताये हैं। ये सब प्रतिमा के पत्थर के लिये उपयोगी शुद्धि कारक समझ कर ग्रहण किये गये हैं। प्रतिमायें घिसी घिसाई, शुद्ध, ओप की हुई भी आती हैं उनमें इनकी जरूरत नहीं। फिर मूर्ति के प्रतिष्ठित हो जाने पर भी पंचामृताभिषेक करना निरर्थक और मूर्ति का अवर्णवाद है बाद में भी उसको जल से तो शुद्ध करना ही पड़ता है। इस तत्व को न समझकर कुछ जैनाभास संघों ने भट्टारकों ने बाद में स्वार्थवश इसे नित्य पूजा में भी ले लिया है जो असम्यक् है, श्वेतांबरीय है।

अष्ट द्रव्यों में जल द्रव्य को तो अभिषेक में बताया है किन्तु उसकी जगह पंचामृत को कहीं नहीं। पंचामृत शब्द ही दि. आम्नाय संमत नहीं, यह वैदिक और श्वेतांबरीय है। जिनसेन गुण भद्रादि के मूल संघी ग्रंथों में सर्वत्र जलाभिषेक ही का वर्णन है। विशेष के लिये देखो—जैन निबंध रत्नावली का अन्तिम निबंध—"मूल संघ में पंचामृताभिषेक का अभाव"

पूजा विधि रहस्य

२. प्रश्न—तेरापंथ और बीसपंथ की पूजा विधि में कौन समीचीन है ?

उत्तर—तेरापंथ की पूजा विधि को बीसपंथ आदि सभी मान्य करते हैं उसका उपयोग करते हैं अत: वह तो सर्व सम्मत है। किन्तु बीसपंथ की पूजा-विधि को तेरापंथ आदि अमान्य करते हैं अत: यह निर्दोष नहीं है और न निर्विवाद ही है।

जिस पूजा विधि में कमसे कम आरम्भ और हिंसा हो वह उतनी ही श्रेष्ठ है और जिस में ज्यादा से ज्यादा आरम्भ व हिंसा हो वह उतनी ही असम्यक् है। इस तरह भी तेरापंथ की पूजाविधि ज्यादा समीचीन है वह सरल, सस्ती और सुन्दर भी है साथ ही वीतरागता, निर्ग्रंथता को भी लिये हुए है। जबकि बीसपंथ की पूजाविधि असम्यक् है, वह कठिन, महंगी, अशोभन एवं सरागता सग्रंथता, सावद्यता को लिये हुए है।

जिस पूजा विधि में विवाद हो, संशय हो वह ग्राह्य नहीं है। जैन शास्त्रों में शंकित दोष के अन्तर्गत बताया है कि—किसी वस्तु में कोई भी संदेह उपस्थित हो जाये तो उसे त्याग देना चाहिये त्याग देने में कोई हानि नहीं, किन्तु ग्रहण करने में तो आपत्तियाँ ही संभव है। इसके सिवा जब निर्विवाद निःसंशय वस्तु उपलब्ध हो तो उसे ही ग्रहण करना चाहिये विवादस्थ संशयात्मक को कभी नहीं—यही विवेक का तकाजा है। इसी से सम्यग्दृष्टि निःसंशय-निशंक होता है। जो प्रत्यक्ष में ही बाधित हो, दूषित हो ऐसी विधि के लिये शास्त्रप्रमाण या किसी साक्षी की भी कोई जरूरत नहीं है वह तो स्वतः ही त्याज्य है। फिर भी हम युक्ति और शास्त्र प्रमाण के साथ उस पर विचार करेंगे। नीचे उसी का प्रक्रम किया जाता है।

३. प्रश्न—हम पूजापाठों में बोलते तो 'घेवर-गिंदोड़ा बरफी जु पेड़ा' हैं और चढ़ाते उनकी जगह चिटकें हैं क्या यह मायाचार या असत्य नहीं है ?

उत्तर—यह कदापि मायाचार या असत्य नहीं है। यह स्थापना सत्य है। जिस तरह पत्थर की मूर्ति साक्षात् अरहत की मानी जाती हैं उसी तरह स्थापना निक्षेप से चिटकें भी नैवेद्य (मिष्ठान्न) मानी जाती है इसमें कोई दोष नहीं है। हमारी सारी पूजा प्रक्रिया (पूज्य-पूजक-पूजा विधि) ही स्थापना निक्षेप के आधार पर संकल्पित हैं। देखिये—पूजक अपने को इन्द्र कहता है किन्तु उसमें इन्द्र के एक भी गुण नहीं हैं। हम बात क्षीर समुद्र के जल की करते हैं किन्तु किसी भी कूप-सरोवर-नदी का जल लाकर हम अभिषेक कर देते हैं। हम अक्षत चढ़ाते वक्त मोतियों के पुन्ज बोलते हैं

और चढ़ाते कोरे चांवल हैं। इसी तरह पुष्प चढ़ाते वक्त अनेक पुष्पों के नाम बोलते हैं किन्तु चढ़ाते पीले चांवल हैं। कुंकुमाक्त-केसर से रंगे पीले चांवलों की पुष्प संज्ञा आसाधरादि सभी शास्त्रकारों ने मान्य की है। बात रत्नों के दीपक की करते हैं और जलाते घृत के दीपक हैं। हम बोलते सिंहासन (सिंहों से अधिष्ठित आसन) हैं किन्तु लकड़ी, चांदी, पीतल आदि के कोरे चार पायों के आसन विराजमान कर देते हैं। इसी तरह साक्षात् पंचमेरु अष्ट प्रातिहार्य-अष्टमंगल की जगह धातु आदि के नकली विराजमान स्थापित कर देते हैं। हम चमर (चमरी गाय की पूंछ के बालों का गुच्छा) ढोरने की बात करते हैं, किन्तु गोटे आदि के बने नकली चंवर ढोरते हैं क्योंकि असली हिंसाजन्य होते हैं।

जब हम इतना काम नकली करते हैं तो फिर कुछ पूजा-द्रव्यों पर ही क्यों आपत्ति की जाती है। तेरापंथियों ने असली पुष्प-नैवेद्य-फलादि में बह्वारंभ और विपुल हिंसा लक्षित कर स्थापना निक्षेप से उनकी जगह प्रासुक द्रव्यों का नियोजन कर लिया तो वह सब तरह से समुचित और समीचीन ही है। उसकी किसी तरह आलोचना करना अज्ञता है।

जैसा पूजा पाठों में बोलते हैं ठीक उसी तरह विविध पुष्प नैवेद्य फलादि तो बीसपंथी भी नहीं चढ़ाते हैं। फिर दूसरों पर आरोप आपत्ति क्यों ?

अगर तप कल्याणक आहारदान के अवसर पर चार प्रकार के आहार नैवेद्य का उपयोग न कर कोरी चिटकें समर्पित करें तो वह अवश्य मायाचार या असत्य है। क्योंकि वहाँ स्थापाना सत्य काम नहीं करता किन्तु जब मूर्ति जड़-पत्थर की है और उस अरहंत अवस्था की है जिसमें आहार-भोजन का कोई काम नहीं है वहाँ पर स्थापना सत्य ही संगत और सम्यक् है।

लोक में भी इस प्रकार के सत्य का काफी वर्चस्व व्यवहार है। देखिये—स्याही उसे कहते हैं जो स्याह (काले) रंग की हो किन्तु लाल, नीले, हरे आदि रंगों की बनी को भी स्याही ही कहते हैं। इसी तरह तेल उसे कहते

हैं जो तिलों से उत्पन्न हुआ हो किन्तु मूंगफली-सरसों, सोयाबीन, अण्डोली से निकले स्निग्ध पदार्थ को भी तैल ही कहते हैं। बांस से बने वाद्य को बन्शी कहते हैं किन्तु पीतल, स्टील आदि धातु से बनी भी बंशी कही जाती है। चांवल को अक्षत्-आखा कहते हैं किन्तु जौ, गेहूँ आदि धान्यों को भी आखा कह देते हैं। अमर कोष में रसाल और सहकार ये आम के ही नाम बताये हैं (आम्रश्चूतों रसालश्च् सहकारोऽतिसौरभः ।।) किन्तु अन्य फलों को भी रसाल और सहकार (सैगार-व्रत का पारणा) कहते हैं। मृग का अर्थ हिरण होता है। किन्तु अन्य पशुओं को भी संस्कृत काव्यों में मृग कहा है।

इसी तरह शतरंज, गंजीफा (तास) नकशे आदि में भी स्थापना निक्षेप का व्यवहार होता है। स्थापित वस्तु चाहे सजीव हो चाहे निर्जीव तदाकार (उसी आकार की) हो चाहे अतदाकार (भिन्न आकार की) सब स्थापना निक्षेप में आ जाती है।

समक्ष में १-२ तीर्थङ्करों की मूर्ति होते हुए भी हम अन्य तीर्थंकरों सिद्ध बाहुबली, सप्तर्षि, निर्वाण क्षेत्र, दशलक्षण, रत्नत्रय, अकृत्रिम चैत्यादि की पूजा कर लेते हैं उसी तरह नैवेद्य पुष्पादि का उच्चारण करके भी उनकी जगह प्राशुक द्रव्य चढ़ा देना अनुचित और असत्य नहीं है बल्कि ज्यादा समुचित और सम्यक् है।

इससे सिद्ध है कि—शब्दों पर ज्यादा जोर देना व्यर्थ है। शब्द मुख्य नहीं है भाव ही मुख्य और फलदायी हैं शब्द तो सिर्फ माध्यम हैं। इसी तरह संकल्प विचार ही मुख्य हैं वस्तु मुख्य नहीं है इसीलिये वस्तु के अभाव में (या विपरीत वस्तु के होते) भी कोरे संकल्प-भाव से ही शुभाशुभ कर्मों का बन्ध हो जाता है।

एक बात और है—शब्द चाहे कुछ भी हो अर्थ उनसे सदा उच्च एवं आदर्शमय ही ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रों में 'अजैर्यष्टव्यम्' पर कथा देते हुए बताया है कि—जो मांस लोलुपी (हिंसक) थे उन्होंने तो इस का अर्थ यह कियाकि—बकरों, पशुओं से यानि उनकी बलि देकर यज्ञ-पूजा करना

चाहिये और जो अहिंसक थे उन्होंने यह अर्थ किया कि—अज यानि जो न उगे ऐसा 3 वर्ष पुराना जौ आदि धान्य हो उससे यज्ञ-पूजा करना चाहिए। इसके निर्णय के लिये जब सत्यवादी राजा वसु के पास गये तो वह गुरु पत्नी के बहकावे में आ गया और उसने गुरु पुत्र का पक्ष ले लिया इससे वह सिंहासन समेत पाताल में धंस गया और मर कर नरक में गया तथा अहिंसक नारद लोक में प्रशंसित हो स्वर्ग में गया। (यह कथा वैदिकों के महाभारत में भी पाई जाती हैं।)

शास्त्रों में अभिधेय (शब्दानुसार) अर्थ की दुहाई देकर अभिप्राय के लोप करने को भी असत्य माना है। अतः शब्द और अर्थ से भी ज्यादा वजनदार-महत्त्वपूर्ण अभिप्राय-आशय है उसी पर लक्ष्य रखना चाहिए।

शब्द ज्यादा वकत नहीं रखते हमारी नियत ज्यादा वकत रखती है अतः शब्दों की शरण न लेकर उनके सम्यक् अभिप्राय का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है। शब्द रूपी नौंकर की क्या सेवा करनी अभिप्राय रूपी ठाकुर की सेवा करनी चाहिये तभी मेवा मिलेगी।

शास्त्रों में भावसत्य के लिये लिखा है-जो वचन हिंसा जनक हों सत्य होते भी वे असत्य हैं। और जिनसे किसी की रक्षा हो वे असत्य होते भी सत्य हैं। यह जैनी नीति है। देखो-"मोक्षमार्ग प्रकाशक" पृष्ठ २८१ (८वां अधिकार)

द्रव्य से भाव महान् हैं। द्रव्य शरीर मात्र मुर्दा है और भाव प्राणमय आत्मा हैं। इस दृष्टि से हम सोचें तो पीले चावलों को पुष्प, चटकों (गिरि) को नैवेद्य तथा पीली चटकों को दीप इत्यादि कहना सब भाव सत्यरूप ही हैं।

अशुद्ध—अप्रासुक द्रव्यों को तो धर्म कार्य में कभी ग्राह्य ही नहीं बताया है। शुद्ध प्रासुक द्रव्यों का ग्रहण ही उपयुक्त बताया है, साथ ही भावों कीशुद्धि पर विशेष जोर दिया है। इसीलिये पूजा के प्रारम्भ में सूचित किया है—

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं।
भावस्य शुद्धि मधिका मधिगन्तु कामः।।

(अर्थात्—यथा शक्य द्रव्य की शुद्धि को प्राप्त करें और उससे भी ज्यादा भावों की शुद्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न रखें।)

4. प्रश्न—जब हमें पुष्प फलादि असली उपलब्ध हैं तो फिर हम नकली क्यों चढ़ायें ? क्या असली से नकली ज्यादा गुणकारी हैं ?

उत्तर—वनस्पति कायिक सचित्त पुष्पादि अनेक त्रस जीवो से भरे होते हैं तथा बहुत से अनन्त कायिक भी होते हैं अतः उनका स्पर्श ही महान् दोषास्पद बताया है फिर उनका चढ़ाना तो किसी तरह समुचित ही नहीं है। पवित्र निष्कलंक प्रभु को प्राशुक निर्दोष वस्तु ही चढ़ाई जा सकती है, सदोष अप्रासुक अशुद्ध वस्तु नहीं। धर्मस्थान में तो इसका खास खयाल रखना चाहिये।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार की "देवाधि देव चरणे परिचरणं" कारिका में जिनपूजा को वैयावृत्य के अन्तर्गत बताया है और वैयावृत्य के अतिचारों में "हरित पिधान निधाने" कारिका में हरित से स्पृष्ट वस्तु को देना अतिचार बताया है। ऐसी हालत में साक्षात् हरित पुष्प फलादि को जिन पूजा में चढ़ाना अतिचार ही नहीं स्पष्ट अनाचार सिद्ध होता है।

पुष्पादि सरागता के द्योतक हैं अतः वीतराग प्रभु के लिये किसी तरह उपयुक्त नहीं हैं। इसी से एकीभाव स्तोत्र में कहा है कि—तत्कि भूषा वसन कुसुमै किं च शस्त्रैरुदस्त्रै ॥ हे भगवान् आभूषण, वस्त्र, पुष्प और शस्त्र ये सब आपके लिए प्रयोजनहीन हैं।

वसुनन्दि श्रावकाचार गाथा ५८ में लिखा है कि—पुष्प नित्य त्रस जीवों से भरे रहते हैं। श्रावकाचारों में बताया है कि—सब जाति के पुष्प हेय हैं। जिन सहस्त्रनाम (श्रुतसागरी टीका) पृ. १५६ सम्यक् दृष्टि के सर्वपुष्पों का त्याग बताया है।

यहाँ "सावद्यलेशो बहु पुण्यराशौ" का अभिप्राय यह है कि—थोड़े स्थावर जीवों की विराधना क्षन्तव्य है। किन्तु अनन्त कायिक स्थावर और त्रसजीवों की विराधना जो पुष्पों में होती हैं वह क्षन्तव्य नहीं है वैध नहीं है। देखो—"भव्यजन कंठाभरण" श्लोक ८३-८४ ॥

बहुत से भाई यह समझते हैं कि—५ वीं सचित्त त्याग प्रतिमा वाले के लिये ही प्राशुक अचित्त पुष्पादि से पूजन का नियम है अन्य के लिए नहीं।" उनकी ऐसी समझ शास्त्र-सम्मत नहीं है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में प्रोषधोपवास के वर्णन में प्रासुक द्रव्यों से ही पूजा करने का खास विधान किया है। प्रोषधप्रतिमा चौथी प्रतिमा है। यह सचित्त त्याग प्रतिमा से पूर्व की है। प्रासुक द्रव्यों से पूजा का विधान प्रोषध प्रतिमा वाले के लिए ही नहीं किन्तु उससे भी नीचे सामान्य प्रोषध करने वाले के लिए भी किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि—सामान्य पूजक तक के लिए मात्र प्रासुक द्रव्य से ही पूजन का विधान है। किन्तु आज तो व्रती ही नहीं प्रतिमाधारी तक वह भी ब्रह्मचारी जो सातवीं प्रतिमा के धारी हैं सचित्त द्रव्यों से पूजा करते कराते हैं।

यह कहाँ तक शास्त्र सम्मत है विवेकी विद्वान् विचार करें। मूलाचार (चतुर्विंशतिस्तव) में "उसहादि जिण वराणं" गाथा की वसुनन्दि टीका में सामान्य तौर पर सभी के लिए प्रासुक द्रव्यों से पूजा करना बताया है।

पं. जौहरीलालजी कृत बीस विहरमान पूजा में भी प्रासुक फूल फल चढ़ाने का ही निरुपण है।

पं. आशाधरजी ने अपने टीका ग्रंथों में अनेक जगह पीततंदुलों को पुष्प संज्ञा दी है। (पुण्या श्रवकथा कोश पृ. १२ में "सुवर्ण वर्ण तंडुलान् पुष्पांजलि संकल्पेन क्षिपेत्" (पीले चांवलों को पुष्प मानकर चढ़ावें) ऐसा लिखा है।

पद्म चरित (रविषेण कृत) भाग २ पृष्ठ ९७ (ज्ञानपीठ प्रकाशन) में भी इसी तरह भाव पुष्पों (पीत तंदुल, स्वर्ण रजत कागज आदि के कृत्रिम पुष्प) का वर्णन किया है। प्रतिष्ठा सारोद्वार (आशाधर) पृ. ९९ कुंकुमाक्त पुष्पाक्षतं।

"व्रत तिथि निर्णय" में भी ऐसा ही उल्लेख है। देखो पृ. २४४

भगवान् के विहार काल में उनके चरणों के नीचे देवगण जो कमल रचते हैं वे स्वर्ण के होते हैं वनस्पति कायिक नहीं। देखो—

भक्तामर स्तोत्र—उन्निद्र हेमनवपंकज पुंज कांति ॥३६॥
चैत्यभक्ति—जयति भगवान्हेमां भोज प्रचार विजृंभिता ॥
यशस्तिलक चंपू—हेमाम्बुजान्यथ जिनस्यपदेऽर्पयामि ॥५०५॥

चैत्यभक्ति के प्राचीन अंचलिका पाठ में भी दिव्वेण गंधेण दिव्वेण-पुप्फेण में दिव्य शब्द इसी प्रासुक अर्थ का द्योतक है।

देवगण जो कल्पवृक्षों के पुष्पों से जिनपूजा करते हैं वे कल्पवृक्ष भी वनस्पति कायिक नहीं हैं वे पृथ्वी के सार हैं—मृण्मयी हैं देखो—तिलोय पण्णत्ती गाथा ३५४ अधिकार ४। लवंग को भी देव पुष्प कहते हैं वे प्रासुक हैं अतः पुष्प की जगह लिये जा सकते हैं।

इसी पूर्व परम्परानुसार तेरापंथ में असली पुष्पों की जगह नकली पुष्पों को समीचीन माना है क्योंकि वे हिंसाजन्यता से दूर हैं।

सवाल असली नकली का नहीं है प्रासुकता-अहिंसकता का है। अगर असली में भी हिंसा है तो वह त्याज्य है और नकली भी हिंसा से रहित है तो वह ग्राह्य है। यही जिनधर्म का सार है और यही विवेक की कसौटी है।

जब हमारी आराध्य मूर्ति ही संकल्पित-नकली है तो पूजा द्रव्यों के नकली होने में आपत्ति करना व्यर्थ है।

इसके सिवा जबकि असली चढ़ाने में कोई लाभ नहीं उल्टा नुकसान है। और नकली चढ़ाने में कोई नुकसान नहीं उल्टा लाभ है और साथ ही वह आगम समस्त एवं निर्दोश निर्विवाद है तो उसी का आश्रय लेना समुपयुक्त है।

एक पूजक को पूजा में मंगल-स्वस्तिपाठ, स्थापना, पूजन, पुष्पांजलि, शांतिपाठ, विसर्जन आदि में प्रतिदिन हजारों पुष्पों की जरूरत होती है। और पर्वपूजा तथा मण्डल विधान, प्रतिष्ठादि में तो इससे भी कई गुणी पुष्पों की जरूरत होती है। इतने पुष्प किसी तरह सम्भव नहीं। इस दृष्टि से भी कुंकुमाक्त चांवल ही पुष्प रूप में उपयुक्त कार्यकारी ठहरते हैं।

मूर्तिमान (असली) से उनकी मूर्ति (नकली) ज्यादा उमर वाली और ज्यादा उपकारी होती है। उदाहरण के लिए महावीर भगवान् को लीजिये उनकी उमर ७२ वर्ष की ही थी किन्तु आज २॥ हजार वर्ष से उनकी मूर्ति प्रचलित है और उससे भव्य निरन्तर अपना आत्म कल्याण कर रहें हैं और आगे भी चिरकाल तक करते रहेंगे।

महावीर के श्रीमुख से निकली दिव्य ध्वनि (असली) से कुछ ही वर्ष तक भव्यों ने लाभ उठाया किन्तु वही शास्त्र रूप से निबद्ध होकर (नकल) हजारों वर्षों से भव्यों का कल्याण कर रही है और आगे भी बराबर करती रहेगी।

अतः असली (असल) से भी नकली (नकल) अनेक जगह ज्यादा गुणकारी हो जाती हैं। नकल में अकल की भी जरूरत नहीं रहती। सस्ता सौदा है। फिर भी उसकी आलोचना की जाती है। और साथ ही उसे अपनाते भी जाते हैं इस विचित्रता को क्या कहा जाय ?

५. प्रश्न—संगतता की दृष्टि से चन्दन को जिन चरणों पर चर्चना और पुष्पों को जिन चरणों पर चढ़ाना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—संगतता की दृष्टि से तो फिर चन्दन केशर को सर्वाङ्ग में ही क्यों न लगाया जाय तथा पुष्पमाला को भी मूर्ति के गले में ही क्यों न पहिनाया जाय। फिर तो जल नैवेद्य और फल को भी मुँह में ही क्यों न दिया जाय ? जब इन तीनों को प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाता है तो चन्दन पुष्पों को भी प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाना चाहिये क्योंकि प्रतिमा वीतराग निर्ग्रंथ अरहंतदेव की है। चन्दन पुष्प को (चाहे रंगे चांवल ही हों) उनके अंग पर चढ़ाना उन्हें सराग सग्रंथ सदोषी बनाना है इस तरह देवा वर्णवाद करके खुद भी दोषी बनना है और प्रतिमा को भी अपूज्य करना है। इस प्रकार के कृत्य को संगत बताना यह और भी ज्यादा हिमाकत है। इसी से कहा है कि—

वीतराग देवजू के बिंब पै लगावे कोऊ,
कुंकुमादि लेप अरु केवड़ा विकार है।
तातें जिनबिंब पाँय दोष न लगावे कोऊ,
दोष जो लगावे ताके कुबुद्धि अपार है॥

काल दोष पाय जिन बिंबकूं पहनाय माल,
केवड़ा बगल धरि लेपे गंध सेती जूँ।

ऐसी विधि परपंच रचि के सराग चिह्न,
ताकूं पूजि मूढ कहे हम समकती जू ॥
लेप पुष्प अरु केवडा कामीजन के होय।
प्रतिमा के दूषण लगे, पूजनीक नहीं होय ॥
जिन प्रतिमा है वीतरागमय, अन्तर बाहर शुद्ध।
पुष्प लेप अरु केवड़ा, ये प्रत्यक्ष विरुद्ध ॥

कोई भी द्रव्य जिन चरणों पर चढ़ाना निषिद्ध हैं, प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना चाहिये। वनस्पति कायिक पुष्पादि तो चरणों पर ही क्या प्रतिमा के आगे भी नहीं चढ़ाने चाहिए।

जैसे लड्डू में विष मिलाने वाला हिंसक-दोषी है उसी तरह मिष्ठान्न के लोभ से उसे खाने वाला भी दोष मृत्यु का भागी होता है जिस तरह शास्त्र में मिथ्या बात मिलाने वाला कपटी है। उसी तरह उसे जिनवाणी मानकर चलने वाला भी कुमार्गी है। इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ बिम्ब को चन्दन चर्चना या उस पर पुष्पादि चढ़ाना भी उसे बिगाड़ना है ऐसा करने वाला और तदनुसार उसे मानने वाला दोनों दोषी-अज्ञानी हैं।

जो केशर चर्चित बिम्ब के पूजन में दोष नहीं मानते हैं उनके केसरादि वर्जित निरावरण के पूजन में दोष आयेगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि—चन्दन चर्चित और अचर्चित दोनों ही वंदनीय हो जावे क्योंकि कभी गोबर और गुड़ (विष और अमृत) एक नहीं हो सकते—दोनों की जाति ही जुदा है।

इसीलिये शास्त्रों में जिनदेव को निर्लेप ही बताया है देखो—

'ज्ञानार्णव'—शुद्ध मत्यन्त निर्लेप ज्ञानराज प्रतिष्ठितं ॥
,, —निर्लेपो निष्कलः शुद्धो ॥
महापुराण—निर्लेपो निर्मलोऽचलः ॥

जैन मूर्ति नग्न ध्यानस्थ योगी की है उसे केशर चर्चना पुष्प लगाना उसके लिये भूषण नहीं दूषण है क्योंकि यह पदविरुद्ध है। पदविरुद्ध क्रिया करना अवर्णवाद है। मूर्ति के लिये उपसर्ग और अंतराय है धर्म-विरुद्ध

है। फिर भी इसे पुण्योत्पादक मानना अज्ञता है। अगर मूर्ति साधारण मनुष्य (सरागी) की हो तो उसके साथ ऐसी क्रिया (खिलवाड़) संगत कहला सकती है, जिन मूर्ति के साथ नहीं।

जैसे बहुत-सी प्राचीन मूर्तियों में छत्रत्रयादि अष्ट प्रातिहार्य उत्कीर्ण रहते हैं, अगर ऐसी क्रिया शास्त्र विहित होती तो फिर मूर्ति में ही यानि गले में फूलमाला, चरणों पर पुष्प और टिपकी मूर्तिकार जरूर उत्कीर्ण कर देते किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वीतराग दिगम्बर मत में ऐसी मान्यता नहीं है। भूगर्भ से अनेक प्राचीन मूर्तियाँ निकलती रहती है किसी के ऊपर केशर पुष्पादि का उपयोग भी नहीं मिलता क्योंकि ऐसी आम्नाय ही नहीं है। यह तो आधुनिक लीला है।

मूर्ति के चरणों पर चन्दन केशर की टिपकी लगाने वाले कहते हैं कि—इससे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित मूर्त्ति की पहचान हो जाती है। अथवा मूर्त्ति का अभिषेक हुआ है या नहीं पूजकों को यह भी ज्ञात हो जाता है टिपकी लगाने का कोई उद्देश्य या लाभ आज तक ढूंढ कर नहीं बता सकें तो अब ये नई कल्पनायें ईजाद की गई हैं किन्तु विचार करने पर यह सब दावा भी मिथ्या ही सिद्ध होता है। क्योंकि फिर तो मूर्त्ति की प्रतिष्ठा कराने की ही जरूरत नहीं रहेगी। टिपकी लगाने से ही जब मूर्त्ति प्रतिष्ठित मान ली जाती है तो फिर लोग प्रतिष्ठा का झंझट-व्ययभार क्यों उठायेंगे ? अप्रतिष्ठित, शास्त्रविरुद्ध, अंगहीन, अयुक्त मूर्त्ति के भी लोग टिपकी लगाकर सहज ही योग्य बनालेंगे। इस प्रकार तो सारी व्यवस्था का ही लोप हो जायेगा। दूसरी बात रही अभिषेक की सो फिर लोग अभिषेक भी क्यों करेंगे ? सीधी टिपकी लगा देंगे। टिपकी लगाने की भी क्या जरूरत ? गत दिवस की लगी हुई ही रहने देंगे।

इस तरह प्रतिष्ठा और अभिषेक क्रियाओं का ही लोप हो जायेगा। गलत चीज को जिस किसी तरह सिद्ध करने का यही परिणाम होता है।

जिन चरणयोः गंधं चर्चयामि। जिन पादयोः पुष्पं समर्पयामि ॥
(जिनेन्द्र के चरणों पर गंधलेपन और पुष्पसमर्पण करता हूँ।)

※

शास्त्रों में ऐसे कथन पाये जाते हैं। इस सप्तमी विभक्ति परक कथनों का अर्थ वीतराग आम्नायानुसार ही करना चाहिये तभी श्रेयस्कर है।

जैसे—'गंगायां घोषः' का अर्थ कोई यह करे कि – गंगा नदी में (गंगा नदी के अन्दर) झोंपड़ियाँ होती हैं तो समुचित नहीं है। यहाँ सप्तमी विभक्ति का सामीप्य परक अर्थ करना चाहिये। यानि—'गंगा नदी के समीप (किनारे) झोपड़ियाँ होती हैं' यह अर्थ करना ही संगत होगा। इसी तरह 'वटे गावः सुशेरते' इस सप्तमी विभक्ति परक वाक्य का भी कोई यह अर्थ करे कि—'बड़ के वृक्ष पर गायें सोती हैं' तो असंगत होगा। 'बड़ के नीचे (छाया में) गायें सोती हैं' यह अर्थ करना ही सुसंगत होगा।

ठीक इसी प्रकार 'जिन चरणयोः' का अर्थ जिन चरणों के ऊपर नहीं किन्तु जिन चरणों के समीप, नीचे, अग्रभूमि में गंधपुष्प चढ़ाना चाहिये। ऐसा अर्थ करना ही समीचीन होगा। यही शास्त्र विहित दि० आम्नाय सम्मत सम्यक् सुसंबद्ध पद्धति है।

चरणों के पास का भाग भी चरण ही कहलाता है। जैसे—सिद्धान्त में तीर्थंकर प्राकृति का बन्ध केवली श्रुत केवली के पादमूल में बताया है। यहाँ 'पाद-मूल' शब्द का अर्थ वहाँ का समीप क्षेत्र है।

'हाथ में कंकण' का अर्थ कुहनी और भुजावाला सारा हाथ नहीं है किन्तु पूंचा मात्र है। इसी तरह 'कृष्ण मुख' का अर्थ जीभ दांत वाला अन्दर का मुख नहीं है किन्तु गाल, आँख, नाक वाला बाहरी भाग है।

अभयनंदि के लघुस्नपन श्लोक १२ में लिखा है कि – देवों ने मेरु के मस्तक पर भगवान् का अभिषेक किया। इसकी संस्कृत टीका में लिखा है कि—'वटे गावश्चरन्ती वत् सप्तमी समीपे' अर्थात् बड़ के ऊपर नहीं बड़ के समीप गायें चरतीं हैं। इसी प्रकार यहां 'मस्तक पर, का अर्थ मस्तक के समीप करना चाहिये।' (क्योंकि सुमेरु की चोटी और स्वर्ग के एक बालाग्र मात्र का अन्तर है अतः वहां कोई विराजमान नहीं हो सकता।)

आराधना कथा कोष में—ग्वाले के द्वारा प्रतिमा के चरणों पर कमल चढ़ाने की बात लिखी है सो यहां भी चरणों की अग्रभूमि अर्थ लेना ही

※

लाजमी होगा क्योंकि—ग्वाला शूद्र होने से प्रतिमा का स्पर्श नहीं कर सकता। 'उपरि' का अर्थ भी ठीक ऊपर नहीं होता। जैसे—'वह कुये पर सो रहा है' इसका मतलब है कुये की जगत् पर पास की भूमि पर सो रहा है। अगर यहां खास ऊपर अर्थ करेंगे तो फिर मनुष्य ही कुये में गिर जायेगा।

आदि पुराण पर्व ४२ श्लोक २६ में जिन चरणों से स्पर्शित माला (शेषा) को मस्तक पर धारण करना बताया है। यहां भी चरणों के पास की भूमि-चरण चौकी से स्पर्शित अर्थ लेना चाहिए। अगर ऐसा अर्थ न लिया जावे तो उसी पर्व के श्लोक २७ में मुनियों की शेषा को भी ग्राह्य लिखा है। तो क्या मुनियों के अंग पर भी गंधलेपन पुष्प समर्पण होता है? ऐसा मानने पर तो मूलाचारादि से विरोध आयेगा क्योंकि मूलाचार अधिकार ९ गाथा ७१ की वसुनंदि टीका में लिखा है कि—पाद-धोयणं कुंकुमादि रागेण पादयोनिमली करणं त्याज्यं। अर्थात् चंदन केशर चरणों के लगाने का त्याग साधु को करना चाहिये। इसी तरह आगे गाथा ७२ में स्पष्टतया मूल में 'लेपन' (चंदन कस्तूरिकादिना शरीरस्थ चर्चनं) का निषेध किया है। मूलाचार अ० १ गाथा ३०-३१ की टीका तथा योगिभक्ति गाथा १४ की टीका भी देखिये जिन में स्पष्टतया विलेपनादि का निषेध किया है। लेपनादि नग्न दिगम्बरत्व के भी विरुद्ध है।

गुणभद्र कृत—बृहत्स्नपन श्लोक ४० में—'क्षिपामि जिन पादयो रूप-धरित्रि पुष्पांजलिम्' लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि—पुष्पांजलि जिन चरणों के पास की भूमि में ही चढ़ाई जाती है जिन चरणों से स्पर्शित नहीं की जा सकती है। इसी तरह सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार पृष्ठ १०२ में लिखा है कि—'जिनश्री पाद पीठस्थां शेषां शिरसि धारयेत्।' अर्थात् चरण चौकी पर स्थित शेषा-पुष्पमालादि को शिर पर धारण करना चाहिये।

गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ३२१-गंधादिभि विभूष्यैतत्पादोपात्त महीतलं॥ इसमें स्पष्ट मुनि पुंगव महावीर के चरणों की-पासकी भूमि पर गंध पुष्पादि के चढ़ाने का उल्लेख किया है।

यशस्तिलक चम्पू में बताया है—'पुष्पं त्वदीय चरणार्चन पीठसंगात्' ॥५०७॥ अर्थात्-भगवान् की चरण चौकी पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं भगवान् के चरणों पर नहीं। पुष्पों का ससर्ग चरण चौकी से ही है चरणों से नहीं। यहां मूल के 'अर्चन-पीठ' (पूजा चौकी) शब्द से इस बात का भी खुलासा होता है कि पूजाद्रव्य चरणों के आगे चौकी पर चढ़ाये जाते हैं और उस चौकी को 'अर्चन-पीठ' कहते हैं।

रावजी सखारामजी द्वारा प्रकाशित गजांकुश कृत अभिषेक पाठ के साथ गुरुपूजा छपी है इसमें पुष्पों को मुनि चरणों की पास की भूमि में चढ़ाना लिखा है। निम्नांकित ग्रन्थों में भी प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना लिखा है— बसवा गुटका (वि० सं० १५६३) पृ० ४६ आदि-जिनाग्रे परिपुष्पांजलिक्षिपेत्।

नित्य पूजापाठ—विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रेपुष्पांजलि क्षिपेत्।

नित्यमहोद्योत (पृष्ठ २५९) अर्हत्पुरः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

" " पृ० २५१ (टीका) त्रैलोक्यनाथ चरणयोर्विषयेऽग्रेवारच्यतेऽयं पुष्पांजलिः।

अभिषेक पाठ (अभयनंदि) पूजां पुरो विरचयामि जिनाधिपानां ॥३९॥

'अभिषेक पाठ संग्रह' पृष्ठ १६६— जिनाग्रे पुष्पांजलिः

आदि पुराण पर्व २५ श्लोक ५६ में बताया है कि—सिंहासन भगवान् के स्पर्श से सुशोभित था—सिंहैरूढं विभातीदं तव विष्टर मुच्चकैः। रत्नांशुभिर्भवत् स्पर्शान्मुक्त हर्षांकुरैरिव॥ इसी प्रकार पर्व २३ श्लोक ६ में लिखा है कि—ऋषभदेव जिस तीन कटनीदार सिंहासन पर विराजमान थे वह उनके चरण स्पर्श से पवित्र था। यहाँ स्पर्श शब्द का अर्थ छूना नहीं है किन्तु सन्निकट है क्योंकि भगवान् सिंहासन से चार अंगुल ऊपर अधर विराजमान रहते हैं उससे स्पृष्ट नहीं होते। -जैसा कि आदि पुराण पर्व २३ श्लोक २९ में तथा—त्रिलोक प्रज्ञप्ति गाथा ८९५ अधिकार ४ में लिखा है।

अतः जिन चरणों से स्पृष्ट शेषा का अर्थ चरण चौकी से स्पृष्ट लेना

चाहिए। स्पर्श शब्द से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। यही विवेक और समीचीनता का तकाजा है।

लौकिकता में भी रजस्वला का रसोई घर में खाद्य वस्तुओं का स्पर्श नहीं करते भी प्रवेश कर लेना मात्र ही स्पर्श दोष मान लिया जाता है। यही बात ब्राह्मण के चौके की है और यही बात शोध के चौके की है।

इसीलिये स्पर्श का अर्थ सभी जगह छूना करना ठीक नहीं है जहां जैसा युक्त और उत्तम हो वैसा ही करना चाहिये। शब्दों के पीछे लट्ठ लेकर पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। शास्त्रों में अनेक तरह के कथन हैं जिनमें दृष्टिकोण के समझने की बड़ी जरूरत है। ठीक आशय के ग्रहण न करने से अनेक विसंवाद उठ खड़े होते हैं।

किसी सास ने बहू को कहा—ऊपर से कचरा डालो तो आदमी देखकर डालना। बहू ने जब नीचे से आदमी गुजरा तो उस पर कचरा डाल दिया। इसमे जब झगड़ा हुआ तो सास ने बहू को कहा—मेरा आशाय तो यह था कि—आदमी देखकर यानि आदमी बचाकर डालना तुमने आशय तो पकड़ा नहीं और गलत तरीके से शब्दों को पकड़ लिया। इसी से यह अनर्थ हुआ।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है—

अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।
खण्डयति धार्यमाणं, मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां ॥५९॥

अर्थात्—जिनेन्द्र का नयचक्र अत्यन्त तेज धार वाला और दुःसाध्य है अगर उसे सावधानी से ग्रहण नहीं किया जाय तो वह ग्रहणकर्त्ता का ही शिर तत्काल उड़ा देता है।

निर्वाण क्षेत्र नंदीश्वर द्वीप रत्नत्रयादि की पूजा में भी गंध-पुष्पादि चढ़ाये जाते हैं तब उनका विलेपनादि किनके होगा? अतः प्रतिमा के आगे चौकी पर ही अष्ट द्रव्यों को चढ़ाना सुसंगत है।

राजवार्तिक अ० ६ सू० २२—'चैत्यप्रदेश गंध माल्य धूपादि मोषणं'— इसमें प्रतिमा के गंधादि को चोरना अशुभाश्रव का कारण बताया है। अगर

गंध के लेपन की प्रवृत्ति मानी जाय तो इसका चुराना संभव नहीं अतः गंधादि का चढ़ाना ही इससे सिद्ध होता है।

राजवार्तिक अ० ७ सूत्र २९ में चंदन को परिग्रह में बताया है तब उसे मूर्ति के लगाकर निर्ग्रन्थ दि० मूर्ति को सग्रंथ बनाना है।

आहार के भेदों में लेप्याहार भी शास्त्रों में बताया है। जब अरहंत भगवान् के आहार ही नहीं होता तो फिर उनके शरीर पर लेप लगाना दिगम्बर आम्नाय सम्मत नहीं है, यह तो श्वे० आम्नाय है। भगवान् के किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं होता अतः कोई भी पूजाद्रव्य उनके अंग पर नहीं चढ़ाना चाहिये सामने चढ़ाना चाहिये। देखो—"मोक्षमार्ग प्रकाशक" पृष्ठ १६४

चर्चन का अर्थ पूजन लेना चाहिये विलेपन नहीं क्योंकि कोशों में चर्चन का अर्थ पूजन भी दिया है। विलेपन लें तो अंग पर लेपन नहीं करना चाहिये अग्रभूमि पर लेपन करना चाहिए।

शंका—फिर मूर्ति पर जलाभिषेक क्यों किया जाता है?

समाधान—शुद्ध जल से नित्य प्रक्षाल करने में वीतरागता न बिगड़ कर उल्टी उज्ज्वलता आती है मूर्त्ति की स्वच्छता के लिए वह जरूरी है। दर्शक को इससे सम्यक् दर्शन होता है। जबकि गंधलेपनादि से वीतराग मुद्रा में बिगाड़ आता है सरागता-सग्रंथता द्युोतित होती है। इसमें दोष ही दोष है कोई लाभ नहीं। अभिषेक में जल प्रतिमा पर गिराया जाता है लगाया या ठहराया नहीं जाता वह लगता और ठहरता भी नहीं। जो आर्द्रता होती है वह हवा आदि के संयोग से शीघ्र विलीन हो जाती है। जबकि गंधलेपनादि प्रतिमा के लगाये जाते हैं वे स्थायित्व को प्राप्त होते हैं और प्रतिमा के वीतराग स्वरूप को विकृत करते हैं। ये अचल हैं जबकि अभिषेक का जल चल है अतः दोनों की समता करना अज्ञता है। दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। अभिषेक शास्त्र विहित है गंधलेपनादि शास्त्र विरुद्ध हैं। जलाभिषेक प्राकृतिक है निर्जन वनों गिरिकंदराओं की प्रतिमाओं का वर्षा जल से सदा अभिषेक होता रहता है।

तिलोयपण्णत्ती आदि में बताया है कि—गंगाकुण्ड के नीचे ऋषभ

प्रतिमा हैं जिसके बहते जल से सदा प्रतिमा का अभिषेक होता रहता है। इससे एक बात और फलित होती है कि—फिर उस प्रतिमा के गंधलेपन चरणों पर पुष्प चढ़ाना ये बन ही नहीं सकते हैं।

'सिद्धान्तसार प्रदीप' अध्याय ६—

यज्जैनं चन्द्र बिम्बस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः।
पाद पद्मद्वयं भव्यै स्तद् वंद्यं नैव धार्मिकैः ॥१२४॥

'सद्बोध रत्नाकर'—

पाद द्वयं जिनेन्द्रस्य चन्दनैस्तु सुचर्चितं।
धार्मिकास्ते न पश्यंति, महापाप निबंधकम् ॥

'सार चतुर्विशति' (कुल भूषण स्वामी कृत)

अर्चित पद द्वन्द्वं कुंकुमादि विलेपनैः।
जिनेन्द्र बिम्बं पश्यंति, ते नराः धार्मिकाः भुवि ॥९॥

इन ग्रन्थों में बताया है कि—जिस जिनबिम्ब के चरण कुंकुमादि से विलिप्त हों भव्य उनके दर्शन-वंदन नहीं करते। कुंकुमादि से अलिप्त के दर्शन करने वाले ही धार्मिक हैं।

भाव दीपिका (पं० दीपचंदजी शाह कृत पृष्ठ ५३) ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृ० ९६ और १८८ तथा चर्चासार संग्रह में भी चरणों पर चन्दन चर्चने और पुष्प चढ़ाने का प्रबल विरोध किया है।

प्रश्नोत्तर ये सार, भविक हिरदय धरें।
वीतराग जिनबिम्ब, निरखि वंदन करें॥

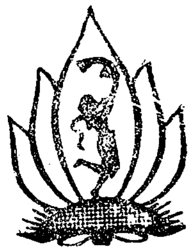

'अष्टद्रव्य पूजा रहस्य' पर आपत्तियों का निरसन

※

हमारा उक्त निबन्ध 'वीरवाणी' १८ नवम्बर और 'जैन संदेश' १८ दिसम्बर में छपा है उस पर श्री नाभिरायजी ने समन्वयवाणी और वीरवाणी में कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं उनकी प्रबुद्धता प्रशंसनीय है। ये विरोधाभास, लेख लिखते वक्त मेरी नजर में भी थे किन्तु लेख बढ़ जाने से मैंने उन्हें छोड़ दिया था अब नीचे उनका समाधान किया जाता है ताकि कोई पाठक भ्रान्त न हो :—

आपत्ति (१)—वे पहिले 'शासन देव पूजा रहस्य' में तो लिखते हैं कि—आह्वानन स्थापन सन्निधिकरणादि असंगत व्यर्थ की क्रियायें हैं और अब उन्हें गर्भ जन्म कल्याणक की प्रतीक बताने लग गये हैं। इस पर आश्चर्य होता है।

समाधान :—पहिले जो आह्वाननादि की काट की हैं उसमें लिखा है:—'क्योंकि अरहत सिद्ध मुक्त जीव किसी के बुलाने से आते नहीं भेजने से जाते नहीं कभी लौटकर आते नहीं। अचेतन स्थिर ऐसे पंच मेरु निर्वाण क्षेत्रादि भी किसी के लिये कैसे गमनागमन करेंगे? रत्न त्रय दशलक्षणादि गुणों का क्यों कोई विसर्जन करेगा?'

ये हेतु अपेक्षायें अभी भी इसी तरह सार्थक युक्तियुक्त हैं और जो समर्थन किया है कि ये गर्भजन्म कल्याणक के प्रतीक हैं वह भी नई खोज के रूप में अपनी जगह युक्तियुक्त है। इससे भी बहुत पूर्व 'पचोपचारी पूजा' (देखो जैन निबन्धरत्नावली का ३४ वां निबन्ध) में हमने मन्त्र सिद्धि में देवताराधन और निराकार स्थापना के रूप में तथा अर्हत्पूजा में आशाधरादि से इनका प्रचलन भी बताया है। नये लेख में चार कल्याणक की मान्यता में इनका निषेध भी द्योतित किया है।

※

अगर बिना किसी हेतु युक्ति विशेष के कोई काट या समर्थनादि किया जावे तो गलत है अन्यथा वह सम्यक् है। इसी का नाम तो अनेकांत है। अपेक्षाओं से एक ही मनुष्य एक ही समय में बाप बेटा आदि अनेक रूपधारी है। पदार्थ पर्याय की अपेक्षा अनित्य है और वही द्रव्य की अपेक्षा नित्य भी है। एक ही समय में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्म अपेक्षा भेद से पदार्थ में सम्यक् माने हैं। हेतुओं युक्तियों अपेक्षाओं कारणों को ही नय कहते हैं। सापेक्ष नय सम्यक् और निरपेक्ष नय मिथ्या हैं। नई नई उत्प्रेक्षाओं से नए नये अर्थ करना, खोज करना, रहस्योद्घाटन करना नये विचारों के लिए सदा मस्तिष्क खुला रखना प्रगतिवाद स्याद्वाद है और दुराग्रह करना मिथ्यावाद है। इसका मतलब लीपापोती करना या गुड़ गोबर एक करना नहीं है सब को अपनी अपनी सीमा में सुव्यवस्थित करना अनेकांत है। यह एक कला है कलाकार बनकर ही इसका उपयोग और आनन्द उठाया जा सकता है इसका मतलब यह भी नहीं है कि कोई चीज बुरी मिथ्या या विरोध के काबिल नहीं है। अच्छा या बुरापन आदि सब एक समय की पर्याय हैं—सापेक्ष है। हर वस्तु हर विषय में विविधता विचित्रता विरुद्धता समन्वयता लबालब भरी हुई है, चाहिये प्रस्तुत करने वाला सुयोग्य कलाकार। इसीलिए कहा है :—

> अमंत्र मक्षरं नास्ति, नास्ति मूल मनौषधं।
> अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजक स्तत्र दुर्लभः॥

अर्थ—ऐसा कोई अक्षर नहीं जो मन्त्र न बने, ऐसी कोई जड़ी बूंटी नहीं जो औषधि न बने, ऐसा कोई पुरुष नहीं जो योग्य न हो, चाहिये सबको फिट करने वाला (संयोजक)।

> अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।
> खण्डयति धार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां॥५९॥

(जिनेन्द्र का स्याद्वाद चक्र दुर्गम और तीक्ष्ण धार वाला है सावधानी से इसका प्रयोग न करने पर यह अपना ही अंग भग कर देता है।)

श्रीयुत नाभिरायजी सा. ने मेरे विधि निषेध कथनों हेतुओं की कोई काट नहीं की है सिर्फ आश्चर्य प्रगट किया है। काट की कोई बात होती तो अवश्य करते। आश्चर्य भी जब होता है जब हम अनेकांत के मर्म को हृदयंगम नहीं करते।

विरोध की आपत्ति की बात तो तब होती है जब हम एक ही डण्डे से सबको हांकने की सोचते हैं। मीटर की चीज को लीटर से नापना चाहते हैं। एक ही अपेक्षा से सर्व निष्पत्ति चाहते हैं अथवा बिना अपेक्षा के, अपेक्षा का खण्डन करके अपेक्षाओं को परस्पर लड़ाकर कुछ करना चाहते हैं। जैसे—

१. 'नमाज मत पढ़, नापाक हो तो' इसमें 'नापाक हो तो' हेतु को छोड़ना ही विसंवाद पैदा करता है।

२. घृताद् शतगुणं तैलं, मर्दने न तु भक्षणे (घी से तेल में सौगुण हैं पर मर्दन में है, भक्षण में नहीं) यहाँ भी अंतिम वाक्यों को छोड़ना आपत्ति-जनक है अथवा 'न' को मर्दन के साथ लेकर मर्दन में नहीं, भक्षण में बताना यह भी अपेक्षाओं को तोड़मरोड़ कर विरोध उत्पन्न करना है।

धवल जय धवल में भी अनेक जगह टीकाकार ने दो-तीन परस्पर विरुद्ध मान्यताओं का संग्रह किया है और यहाँ तक लिखा है कि—ऐलाचार्य का शिष्य इनमें अपनी जबान चलाना नहीं चाहता। उत्तर और दक्षिण प्रति-पत्ति आदि अनेक विभिन्न मान्यताओं का संग्रह किया है किसी का समर्थन किया है युक्ति से किसी का विरोध भी किया है। तिलोय पण्णत्ती में भी ऐसा है। हरिवंश पुराण (जिनसेन कृत) में भी ऐसे परस्पर विरुद्ध अनेक कथन हैं देखो—

(१) सर्ग १८ में 'भोगोपभोग परिमाण' को शिक्षाव्रत में नहीं गिनाया है उसकी जगह सल्लेखना दी है किन्तु सर्ग ५८ में सल्लेखना को हटाकर भोगोपभोग परिमाण को चार शिक्षाव्रतों में गिनाया है।

(२) सर्ग १२ में भरतजी के ९२३ पुत्र बताये हैं किन्तु सर्ग ११ में ५०० ही बताये हैं।

(३) सर्ग १६ में मुनिसुव्रत चरित्र में जो पंचकल्याण तिथियां दी हैं वे पर्व ६० में दी तिथियों से कतई नहीं मिलती। पर्व ६० में २४ तीर्थंकरों की चार ही कल्याणक की तिथियां दी हैं गर्भकल्याणक की नहीं, किन्तु ग्रंथ में जहां ऋषभ, मुनि सुव्रत, नेमि, महावीर ४ तीर्थंकरों का चरित्र दिया है वहाँ उनकी गर्भकल्याण तिथियाँ भी दे दी हैं।

यश स्तिलक चम्पू में भी पूर्व परम्परा से अलग अनेक नवीन नवीन बातों का प्रणयन किया है देखो—

(अ) श्लोक नं. ३१५ में हिंसा, चोरी, झूंठ, कुशीला, परिग्रह यह क्रम रखा है। हिंसा के बाद झूंठ न रखकर चोरी पहिले रखी है। पृ. १७४ में इसी प्रकार से कथा दी है।

(ब) छठी प्रतिमा का नाम 'दिवानवविधं' (दिन में ताजा भोजन करना, बासी नहीं) रखा है। पांचवी प्रतिमा का नाम 'कृषि क्रिया त्याग' तथा आठवीं का 'सचित्त त्याग' रखा है। एवं तीसरी का सामायिक के बजाय 'अर्चा (पूजा)' रखा है।

शास्त्रों में अनेक कथनों के विधि विधानों क्रियाओं के हेतु प्रकट नहीं किये हैं। रुचि भिन्नता, परानुकरण प्रियता, काल प्रवाहादि से उनमें परिवर्तन, विवि- धता, विरुद्धतादि भी होते रहे हैं। प्राय सब अपनी अपनी जगह युक्तिपुर्वक ठीक है। यही हाल पूजा-प्रतिष्ठादि क्रिया विधियों का है। शास्त्रों का ठीक अर्थ न समझने से कुछ दोष भी पैदा हो गये हैं, रूढ़ी, अज्ञान, कषाय, व्यामोह आग्रह ने इनको और बढावा दिया है।

शास्त्रों में तो बिना किसी हेतु युक्ति अपेक्षा को व्यक्त किये परस्पर विरुद्ध कथन संग्रह किये हैं। किन्तु हमने ऐसा (विधि-निषेध) हेतु-युक्तिपूर्वक किया है फिर आपत्ति क्यों? सुधारवादी तो आगम की अपेक्षा भी युक्ति को महत्त्व देते हैं।

युक्ति मद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।
युक्ति हीन विचारेतु धर्महानि प्रंजायते ॥

❊

आपत्ति कार ने 'शासनदेव पूजा रहस्य' पृष्ठ २६ से जो मेरे वाक्य उद्धृत किये हैं उसमें की अंतिम ७ पक्तियां उन्होंने छोड़ दी है जिनमें लिखा है कि–प्रतिष्ठा और मण्डल पूजा विधानादि में इन्द्र द्वारा चतुर्णिकाय के देवों का आह्वान विसर्जन करना शास्त्रों में बताया है जो संगत है.........।

रजिस्ट्री जो सर्व प्रथम होती है वह मान्य होती है और वसीयत अंतिम मान्य होती है। इसी तरह त्रिकाला बाधित सिद्धान्त रजिस्ट्री की तरह हैं और विचारकता वसीयत की तरह है।

अगर कोई प्राचीन मान्यता की तरफ जाना चाहें तो ये पंचोप चारादि व्यर्थ हैं और नई मान्यता (विचारकता) में प्रवेश करना चाहें तो सार्थक भी हैं। रूचिभिन्नता युगप्रभाव से ये विविधताएं अवश्यंभावी हैं जो उदारता से अपेक्षा भेद से संग्रहणीय हैं।

आपत्ति नं. (२) 'पहिले तो कटारियाजी ने अष्टद्रव्य पूजा (जिसमें नैवेद्य फलादि खाद्य वस्तुओं का सामावेश है) का विरोध किया और अब इसे नये लेख में अनेक पोच युक्तियाँ देकर अष्टद्रव्य पूजा को पंच कल्याणक का प्रतीक बताया है जो नई कल्पना है और शास्त्राधार रहित है। अष्टद्रव्य पूजा ईश्वर कर्तृत्ववादी धर्म के प्रभाव से उत्पन्न विकृति है नई नई तथ्यहीन युक्तियाँ घड़ने के बजाय उन्हें मिटाने के लिये विद्वान् आगे आवें।''

समाधान: अष्ट द्रव्य पूजा का स्पष्ठ उल्लेख १॥ हजार वर्ष प्राचीन तिलोय पण्णत्ती आदि ग्रंथों में है। हमने द्रव्य पूजा का क्रमिक इतिहास बताया है अष्ट द्रव्यों का विरोध नहीं किया है विरोध सिर्फ सारंभ सचित्त अप्राशुक खाद्यादि द्रव्य रूपों का किया है स्थापना निक्षेप से उनकी जगह अनारंभ अचित्त प्राशुक द्रव्यों का नहीं किया है। उन द्रव्यों को भी जो प्रतिमा से स्पृष्ट किये जाते हैं उस बात का विरोध किया है आगे चढ़ाने का नहीं। फिर भी अब तक इन ८ द्रव्यों के चढ़ाने का प्रयोजन गुप्त (रहस्यमय) हो रखा था इस नये लेख में उसे उद्घाटित किया है। इस पर अनेक आत्शीर्वादात्मक पत्र आये हैं किन्तु खेद है बिना किसी युक्ति-प्रमाण के

❊

आपत्तिकार उन्हें पोच-तथ्यहीन बताता है। ऐसा कहना सरल है पर उसे सिद्ध करना असंभव है। हम तो सदा "आर्षं संदधीत न तु विघट येत्" (शास्त्र वाक्यों की संगति बैठानी चाहिये उनका विघटन नहीं करना चाहिये) के पक्षधर हैं। सत्य के वस्तुतत्व के हामी हैं। पं. टोडरमलजी आदि सभी वीतराग पंथी विद्वानों ने भी अष्ट द्रव्य पूजा को मान्य किया है। हमने तो उन्हीं के कार्य को बढ़ाया है।

अष्ट द्रव्य पूजा का प्रयोजन ध्यान में न आ पाने से और पूजा में आडंबरादि विशेष बढ़ जाने से श्वे. में स्थानक वासियों ने और दि. में तारण पंथियों ने मूर्ति का ही निषेध कर दिया शायद यह सोचा हो कि –"न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी" किन्तु स्थापना निक्षेप और वीतराग विधि से अष्ट द्रव्य पूजा का प्रांजल रूप तथा पंचकल्याण प्रतीकता से उसका सम्यक् प्रयोजन प्रस्तुत कर दिया गया है तो भी बिना कोई दोषादि बतायें यों ही आपत्ति कार अष्ट द्रव्य पूजा का निषेध कर रहे है यह परिताप और आश्चर्य की बात है। नये लेख से ईश्वर कर्तृत्वादि दोष भी विलीन हो गये हैं। इस तरह सिवा गुण के कोई दोष नहीं, माली व्यास के पारिश्रमिक रूप का गुण और अलग है। फिर आपत्ति क्यों ?

हाथ पैर के नाखून बढ़ने पर नाखून काटे जाते है हाथ पैर नहीं। शिर के बाल बढ़ने पर बाल काटे जाते हैं शिर नही। फिर क्या कारण है कि-आपत्तिकार अष्ट द्रव्य पूजा ही का निषेध कर रहे हैं। अगर उन्हें यह पसन्द नहीं तो वे न करें किन्तु इसका सर्वथा बॉयकाट तो न करें न विकृत कहें। सभी के ज्ञान का क्षयोपशम समान नहीं रूचि समान नहीं अतः अपने मनोभाव लगाने के लिए विविध अवलंबनों का आलंबन पूजा में बताया है। देखो—

आलंबनानि विविधान्यवलंब्य बल्गन्।
भूतार्थयज्ञ पुरूषस्य करोमि यज्ञं॥

अतः किसी एक अवलंबन पर ही आग्रह रखना सम्यक् नहीं। दूसरों को भी निबाह कर चलना चाहिये यही वात्सल्य प्रभावना और संगठन है। जब

खानपान लेखन चित्रण, वसन परिधान, यान वाहन गायन-भजन भवनादि निर्माण, रहन सहन सभी में विविधतायें निरन्तर चल रही हैं तो भक्ति-पूजा का एक रूप कैसे हो सकता हैं ? एक रूप का आग्रह रखने की बजाय अनेक में निर्दोषता वीतरागता का ध्यान रखना समीचीन है।

यशस्तिलक चम्पू में लिखा है कि—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः।
षोढ़ा क्रियोदिता सद्भि र्देवसेवासु गेहिनां ॥९१२॥

गृहस्थ के लिए देव पूजा में छह क्रियायें बताई हैं, १ अभिषेक २ द्रव्य पूजा ३ स्तोत्र पाठ ४ जप ५ ध्यान ६ स्वाध्याय (इसमें अर्वाचीन प्राचीन सभी का संगम हैं। किसी एक का आग्रह रखना या सभी का एक साथ आग्रह रखना ठीक नहीं सामर्थ्य, रुचि अनुसार कभी किसी का भी आश्रय लिया जा सकता है। इनमें से किसी एक ही को ठीक बताना भी सम्यक् नहीं सभी ठीक हैं।)

अष्टद्रव्य पूजन का प्रयोजन मैंने पंचकल्याण (तीर्थंकर जीवन चरित्र) रूप में व्यक्त किया इस पर आपत्तिकार शास्त्राधार चाहते हैं सो जब वे अष्ट द्रव्य पूजा ही को शास्त्राधार से नहीं मानते हैं तो उसके प्रयोजन के लिए शास्त्राधार क्यों चाहते हैं ? वैसे जो कथन युक्ति युक्त हों (तर्कादि से बाधित न हो) वे स्वयं शास्त्र हैं। रत्न करण्ड में शास्त्र-लक्षण में यही बताया है। अतः शास्त्र के लिए शास्त्र-प्रमाण व्यर्थ है। जोंक के जोंक नहीं लगती। फिर भी शास्त्र प्रमाण नीचे अंकित करता हूँ—

अस्त्यत्रपंचधा पूजा मुख्य माह्वानमात्रिका।
प्रतिष्ठापन संज्ञाथ सन्नि धिकरणं तथा १७३।
ततः पूजन मत्रास्तिततो नाम विसर्जनम्।
पंचधेयं समाख्याता **पंचकल्याण दायिनी** १७४।

—"लाटी संहिता" अध्याय ५

(पूजा ५ प्रकार की है—१ आह्वान २ स्थापन ३ सन्निधिकरण ४ पूजन (अष्टद्रव्य समर्पण) ५ विसर्जन यह पूजा **पंचकल्याण स्वरूपा** है।) इसमें पंचोपचार और पंचकल्याण रूप पूजा को बताया है। शास्त्राधार चाहने वाले स्वयं शास्त्र को मान्य नहीं करते। प्राचीन अंचलिका पाठ में ४ सुगंधित द्रव्यों का उल्लेख है वह भी इन्हें मान्य नहीं। वहां के दिव्वेण ण्हाणेण पाठ का भी ये लोप करते हैं क्योंकि इन्हें अभिषेक भी मान्य नहीं। किन्तु अभिषेक सिर्फ प्रतिमा की शुद्धि के ही लिए नहीं बल्कि उससे अपनी दासता-चाकरी और भगवान् की त्रैलोक्य-नाथता बताना भी है। अभी हमने इसी प्रयोजन को "जिनाभिषेक रहस्य" नये लेख में प्रकट किया है।

आपत्तिकार ने केवल आश्चर्य प्रकट करते हुए और भी जो बातें लिखी हैं वे सब बिना हेतु-युक्ति के होने से निःसार हैं। हमने जो कुछ नया लिखा है वह पुराने का ही संशोधित परिवर्द्धित संस्करण है। नया पुराना सब सापेक्षिक हैं, सबका यथोचित संग्रह करके चलना चाहिये भ्रान्त नहीं होना चाहिये यही विनम्र अनुरोध है। जो विरोध लक्षित होता है वह विरोधाभास है।

सूक्ष्मबुद्ध्या सदाज्ञेयो, धर्मो धर्मार्थिभिर्नरैः।
अन्यथा धर्मबुद्ध्यैव, धर्महानि र्प्रजायते ॥*

दिनांक २४-१-८७ **रतनलाल कटारिया, केकड़ी**

*अर्थ—धर्मात्माओं को सदा सूक्ष्म बुद्धि से ही धर्म का ज्ञान करना चाहिये। अन्यथा धर्म की बजाय अधर्म हो जाता है।

॥ श्री शान्तिनाथाय नमः ॥

वीतराग मार्गानुसार

मंदिर के नियम

(जिन-पूजाभिषेक करते समय इनका अवश्य ध्यान रखें)

१. शासन देवादि कुदेव पूजा न करें।
(वीतराग पूजा ही करें)

२. पंचामृताभिषेक न करें।
(जलाभिषेक ही करें)

३. प्रतिमा के चरणों पर केशर चन्दन न चर्चे।
(प्रतिमा के आगे ही चढ़ावें)

४. सचित्त फल फूलादि न चढ़ावें।
(प्रतिमा के आगे अचित्त ही चढ़ावें)

५. रात्रि में पूजाभिषेक न करें।
(दिन में ही करें)

६. प्रतिमा का अभिषेक स्पर्श स्त्री न करे।
(पुरुष ही करें)

जिन प्रतिमा जिन सारखी कही जिनागम माहिं।
रंचमात्र दूषण लखे, वंदनीक सो नाहिं॥
वीतराग ही देव हैं, रागी होय कुदेव।
राग सहित कूं त्याग कर वीतराग कूं सेव॥
जिन प्रतिमा जिन रूपकी, अन्तर बाहिर शुद्ध।
पुष्प चेप अरु केवड़ा वे प्रत्यक्ष विरुद्ध॥

—व्यवस्थापक